ज्ञान तत्व अंक 139,
(क) लेख – भारतीय राजनीति और लोकतंत्र ।
(ख) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर ।
(ग) अपनों से अपनी बात ।
(घ) **धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित आतंकवाद– आचार्य पंकज**

(क) भारतीय राजनीति और लोकतंत्र

भारत में लम्बी गुलामी के कारण जब भारतीय समाज व्यवस्था विश्व व्यवस्था से बाहर हुई तो तीन ही व्यवस्थाओं के बीच प्रतिस्पर्धा रह गयी थी। 1– पश्चिम की लोकतंत्र 2– साम्यवाद की अर्ध तानाशाही 3– इस्लाम का धर्मतंत्र। तीनों वर्तमान व्यवस्था में प्रतिस्पर्धारत् है। गॉधी जी ने स्वतंत्र भारत में भारत की व्यवस्था को प्रतिस्पर्धा में शामिल करने की तैयारी की थी, किन्तु धर्मतंत्र की कटटरता को वह बात पसंद नहीं आई और भारतीय समाज व्यवस्था को विश्व व्यवस्था में प्रवेश का अवसर ही नहीं मिल सका।

साम्यवाद की अर्ध तानाशाही तथा इस्लामिक धर्मतंत्र का तो समाज व्यवस्था से कोई लेना–देना ही नही है। दोनों प्रणालियां मानव समाज को अक्षम घोषित करके व्यवस्थित संचालन का दायित्व अपने पास रखना अपना विशेष अधिकार मानती है, किन्तु लोकतंत्र ने भारतीय समाज व्यवस्था से उधार लेकर एक नयी व्यवस्था बनायी जिसमें समाज को अनेक मामलों में स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय के अधिकार दिये गये। परिणाम हुआ यह कि शासक और शासित Dominator and Dominated के बीच की दूरी कम हुई। समाज में चिन्तन का विकास हुआ तथा जियो और जीनों दो का आंशिक रूवरूप बना। लोकतांत्रिक देशों ने लोकतंत्र को अपनी जीवन पद्धति के रूप में बढ़ाना शुरू किया और उनका यह प्रयत्न आज भी जारी है।
गांधी जी लोकतंत्र को और अधिक आदर्श स्वरूप में लागू करने की योजना में लगे थे जिसका आधार था लोक नियंत्रित तंत्र और परिणाम होता लोकतांत्रिक जीवन पद्धति जिसका आंशिक लाभ पश्चिम के लोकतंत्र में दिख रहा था। और भारत में बहुत शीघ्र दिखने लग जाता। भारत में लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में स्थापित होने में कोई कठिनाई नहीं होती, क्योंकि भारत तो अपने प्रारंभिक काल से ही परिवार व्यवस्था समाज व्यवस्था तक अभ्यस्त रहा है, किन्तु गांधी के बाद शेष बचे राजनेताओं ने लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में स्वीकार न करके शासन पद्धति के रूप में स्वीकार कर लिया। इस कार्य के लिए उन्होंने लोक नियंत्रित तंत्र को लोकनियुक्त तंत्र के रूप में प्रचारित किया जो हमारा आदर्श नहीं था। पूरी दुनिया में लोकतंत्र का अर्थ लोक नियुक्त तंत्र ही प्रचलित है,, क्योंकि उन देशों में लोकतंत्र को जीवन पद्धति का अंग मान लेने के कारण कोई विशेष कठिनाई नहीं आई, किन्तु भारत में लोकतंत्र को जीवन पद्धति न मानकर शासन पद्धति मान लेने से लोकतंत्र के दुष्परिणाम भारत को झेलने पड़े। पूरी दुनिया का इतिहास गवाह है कि तानाशाही और धर्मतंत्र में अव्यवस्था नहीं हो सकती। लोकतंत्र की यह विशेषता है कि यदि लोकतंत्र जीवन पद्धति की ओर झुका तो अव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ और हो ही नहीं सकता। चाहे लोकतंत्र लाख प्रयत्न कर ले किन्तु लोकतंत्र बढ़ेगा लगातार अव्यवस्था की दिशा में ही जैसा कि भारत में स्पष्ट दिख रहा है। समाज लम्बे समय तक अव्यवस्था नहीं झेल सकता। यदि समाज लोकतांत्रिक जीवन पद्धति की दिशा में व्यवस्थित रह सका तो ठीक है अन्यथा समाज को व्यवस्था चाहिए और वह तानाशाही की ओर देखना शुरू कर देगा चाहे वह तानाशाही साम्यवाद की हो या धर्मतंत्र की। और यदि इनके स्थान पर कोई तीसरे तंत्र की भी तानाशाही हुई तो समाज उसे स्वीकार करेगा किन्तु अव्यवस्था स्वीकार नहीं कर सकता।
लोकतंत्र एक जीवन पद्धति है शासन पद्धति नहीं। दुनिया के लोकतांत्रिक देशों में दूसरे देशों में लोकतंत्र को जीवन पद्धति के रूप में बढ़ाने की अपेक्षा शासन पद्धति के रूप में बढ़ाने की भूल की। स्वाभाविक परिणाम है अव्यवस्था और लम्बी अव्यवस्था का परिणाम है तानाशाही। पाकिस्तान, बाग्लादेश,

वर्मा में नये–नये प्रयोगों में लगे है। इराक और नेपाल का नवीनतम प्रयास भी हम अव्यवस्था की ओर बढ़ता हुआ देख ही रहे हैं और घुमा फिराकर इन सब स्थानों पर अव्यवस्था और तानाशाही के बीच के ही प्रयोग चलते रहेंगे यह निश्चित है।

हम भारत की स्थिति पर विचार करें। भारत में भी परिणाम वही होना है जो स्वाभाविक है। इससे भिन्न कुछ हो ही नहीं सकता। अव्यवस्था लगातार बढ़ रही है। अव्यवस्था का लाभ उठा रहे मुटठीभर लोकतंत्र समर्थक लोकतंत्र मजबूत होने का ढिढ़ोरा पीट रहे है। संजय दत्त को सजा घोषित होते ही कुछ लोग कहने लगे कि भारत में लोकतंत्र की जड़े गहरी हो गयी है। प्रश्न उठता है कि संजय दत्त की सजा लोकतंत्र की कसौटी है या अवैध शस्त्रों की कमी। क्या संजय दत्त की सजा के एक माह बाद अवैध शस्त्र कम होने की संभावना है? यदि हमारी व्यवस्था ने किसी उच्च या सर्वोच्च राजनेता को न्यायिक प्रक्रिया से भी भ्रष्टाचार के मामले में फांसी दे दी तो इससे लोकतंत्र कहां मजबूत हुआ जब तक कुल मिलाकर भ्रष्टाचार की वृद्धि दर नहीं रूकी। मैं यह निश्चित रूप से कह सकता हूं कि किसी घटना विशेष से लोकतंत्र की मजबूती बताने वाले लोग या तो हार मानकर समाज सेवा में लगे हुए समाज शास्त्री हैं या लोकतंत्र का आनन्द उठा रहे राजनीति शास्त्र से जुड़े लोग। बीच में कुछ पेशेवर लोग भी राजनीति की जूठन पर पेट चलाने की मजबूरी में कभी लोकतंत्र मजबूत का नारा दे देते हैं तो कभी कमजोर का। जंतर–मंतर पर रोज की ऐसी अनेक कठपुतलियां भी देखने को मिल जाया करती हैं जो लोकतंत्र को कभी कमजोर तो कभी मजबूत का नाटक करते रहते हैं।

साम्यवाद और धर्मतंत्र का तो लोकतंत्र से कोई संबंध है ही नहीं। साम्यवाद भारत में अव्यवस्था के परिणाम स्वरूप अपनी तानाशाही स्थापित करने के सपने देख रहा है यह पूरा भारत समझ रहा है। धर्मतंत्र के विषय में भी मैं आश्वास्त हूं कि धर्म को तंत्र अर्थात शासन से जोड़कर देखना इस्लामिक व्यवस्था है। भले ही कुछ हिन्दू संगठन भी ऐसा सपना क्यों न देख रहे हों। धर्म को राजनैतिक सत्ता के लिए उपयोग करना समाज व्यवस्था को बहुत नुकसान कर सकता है। आर्य समाज ने हां मानकर इस संघर्ष के स्वयं को अलग कर लिया है। सर्वोदय ने भी अंगूर खटटे घोषित कर दिये हैं और गुलाम गांवो में स्वदेशी शीतलपेय खादी के सहारे ग्रामवासियों को गुलामी के कष्ट भूलने की मरहम पटटी सिखा रहे हैं। भारत में संगठनों की तो बाढ़ आई हुई है। अनेक तो भारतीय लोकतंत्र से ही कोई पद, प्रशंसा या पुरस्कार पाने के लिए प्रयत्नशील हैं तो कुछ ऐसे भी हैं जो पश्चिमी देशों से गुप्त धन लेकर भारत को दिन–रात (अ) लोकतंत्र में जीने की ट्रेनिंग दे रहे हैं। मैंने तो कुत्ते की पूंछ उठा कर देखना भी अब बन्द कर दिया है, क्योंकि इतनी मेहनत का कोई लाभ नहीं।

ऐसी स्थिति में कोई समाधान है या नहीं यह प्रत्यक्ष प्रयत्न है। वातावरण निरन्तर अव्यवस्था की ओर बढ़ रहा है जिसका स्वाभाविक परिणाम है या तो तानाशाही या लोकतंत्र की जीवनी शक्ति का अमेरिका आदि देशों से आयात। भारत सभी दिशाओं में हाथ–पैर पटक रहा है जो लोकतांत्रिक शासन पद्धति को भले ही जिन्दा रखे या न रखे किन्तु लोकतांत्रिक जीवन पद्धति तो निश्चित रूप से खतरे में है। ऐसे ही वेदों पर संकट के निराशापूर्ण वातावरण में कुमारिल भट्ट के प्रख्यात शिष्य भाष्कराचार्य ने आवाज दी थी कि उद्वार कौन करेगा? तो शंकराचार्य ने चुनौती स्वीकार की थी। आज न कोई ऐसा आवाज लगाने वाला दिख रहा है न कोई शंकराचार्य सरीखा चुनौती स्वीकार करने वाला। धर्म जाति, भाषा, क्षेत्रियता, उम्र, लिंग, आर्थिक स्थिति, उत्पादक उपभोक्ता आदि के नाम पर समाज को तोड़ने का प्रयत्न करने वाले अवश्य ही गली–गली में मिल जायेंगे। ये सत्ता के खिलाड़ी भी अपनी आवाज में लोकतंत्र शब्द को शामिल कर रहे हैं। साम्यवाद और धर्मतंत्र का तो एकसूत्री एजेण्डा यह है किन्तु अन्य लोग भी किसी न किसी रूप में इस विघटनकारी प्रयत्न में लग जाते है। पूरी तरह निराशा का ही वातावरण दिख रहा है।

हम न तो लोकतंत्र के नाम पर साम्यवाद या धर्मतंत्र की स्थापना का सपना पूरा होते देख सकते हैं न ही लोकतंत्र को हाईजैक करके सत्ता का खेल खेलने वालों का उददेश्य पूरा होने दे सकते हैं। तीसरा कोई मार्ग हमारे पास है नहीं क्योंकि तंत्र ने लोक को यह समझा दिया है कि वर्तमान शासन व्यवस्था ही लोकतंत्र है, समाज व्यवस्था नहीं। ऐसी स्थिति मे लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ समझना संभव नहीं है। उससे अधिक सुविधाजनक तरीका यह होगा कि हम लोकतंत्र शब्द को Reject करके उसके स्थान पर

लोक स्वराज्य शब्द को प्रचलित कर दें। लोकतंत्र के स्थान पर लोक स्वराज्य शब्द हम व्यवस्था परिवर्तन की शुरूआत करे। प्रकृति का नियम है कि अपनी स्वयं की ध्वनि भी दुर्गम क्षेत्रों में प्रतिध्वनि करती है। यदि निराशा के वातावरण में अपनी स्वयं की ध्वनि की भी प्रति ध्वनि पैदा करने की शुरूआत करें तो वातावरण में परिवर्तन आयेगा। सौभाग्य से समाज के कुछ गंभीर विद्वानों द्वारा ऐसी पहल शुरू की गयी है। आइये मिल–जुलकर नारा लगायें कि–

सब सुधरेगा तीन सुधारे–नेता, कर, कानून हमारे।
क्योंकि
लोकतंत्र का नाम है, हम सब आज गुलाम है।
अब स्वराज्य का नारा दो हम पर राज्य हमारा हो।

(ख) कार्यालयीन प्रश्नों के उत्तर

1– प्रश्न– दैनिक हिन्दुस्तान चौदह अगस्त दो हजार सात में प्रकाशित आज तक के कार्यकारी सम्पादक पुण्य प्रसून जी बाजपेयी के लेख से तीन बातें स्पष्ट हुई– **क**– भारत में कुल आबादी के बावन प्रतिशत अर्थात अटठावन करोड़ लोग दस रूपया प्रतिदिन पर गुजारा करते है। इनमें से छब्बीस करोड़ लोग दस रूपया प्रतिदिन पर गुजारा करते हैं। इनमें से छब्बीस करोड़ लोग पांच रूपये और तेरह करोड़ ढाई रूपये पर ही निर्भर है।

ख– भारत के एक कर्मचारी का न्यूनतम वेतन करीब ढाई हजार है जो अगंठित क्षेत्र के मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी से भी कम है।

ग– नीति–निर्देशक तत्वों पर अमल शासन का मुख्य आधार बनना चाहिए था। जो आज तक नहीं बना। संविधान सभा की बैठक में सरदार, पटेल और सी. राजगोपालाचारी ने कहा था कि समाज को वयस्क मताधिकार न देकर प्रारंभ शिक्षा से करना चाहिए क्योंकि जब लोग शिक्षा के माध्यम से योग्य नागरिक बन जायेंगे तभी वे मताधिकार का ठीक ढंग से उपयोग कर सकेंगे।

श्री बाजपेयी जी ने अपना मत व्यक्त किया है कि भारत में जिन समस्याओं का विस्तार हुआ है उसका मुख्य कारण शिक्षा पर कम प्रयत्न रहा।

ज्ञान तत्व बार–बार पढ़ने से स्पष्ट होता है कि इस सम्बन्ध में आपके विचार कुछ भिन्न हो सकते हैं। आप अपनी प्रतिक्रया दें।

उत्तर– मैंने बाजपेयी जी का लेख पढा। ध्यान से पढ़ना पड़ा। मैंने अब तक सुन रखा था कि भारत की तेईस प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा के नीचे है जिसका मापदण्ड न्यूनतम जीवन रेखा मूल्य अर्थात तेरह रूपया साठ पैसा प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन है। मुझे पहले तो अपने लिखे आंकड़ों और बाजपेयी जी के आंकड़े दस रूपया प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति की आबादी बावन प्रतिशत, में विरोध दिखा। किन्तु नीचे पढ़ने के बाद पता चला कि दोनों के बीच का विरोधाभास शब्दों का फर्क है वास्तविक फर्क नहीं। सरकारी आंकड़ें न्यूनतम जीवन रेखा मूल्य से नीचे की आबादी के हैं और बाजपेयी जी के बावन प्रतिशत के जीवन मूल्य का औसत। मेरे अनुसार तेईस प्रतिशत लोगों का जीवन मूल्य एक से चौदह रूपये तक का है जिसका औसत बाजपेयी जी ने पांच बताया है जो सही हो सकता है। बावन प्रतिशत लोगों का एक से तीस हो सकता है जिसका औसत बाजपेयी जी के अनुसार दस रूपया है। इसी तरह के शब्दजाल में लोहिया जी का तीन आना और नेहरू जी का तेरह आना भी आ चुका है जो दोनों ही अपना सच प्रमाणित करने में सफल रहे थे। हम यदि गरीबी रेखा को आधार मानकर यथार्थ पर पहुंचे तो भारत की तेईस प्रतिशत आबादी न्यूनतम जीवन रेखा के नीचे रहती है जो चौदह रूपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन से भी नीचे है और इन तेइस प्रतिशत लोगों के जीवन स्तर का औसत पांच रूपया प्रतिदिन के ही आस–पास है।

बाजपेयी जी ने एक सरकारी कर्मचारी के न्यूनतम वेतन और असंगठित श्रमिक के न्यूनतम वेतन की तुलना करके श्रमिक को लाभदायक स्थिति में बताने का प्रयास किया है। उनके बताये आंकड़े सरकार द्वारा प्रसारित भ्रमपूर्ण शब्दजाल पर आधारित है। श्री बाजपेयी जी ने ऐसा किस उददेश्य से किया यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु है यह पूरी तरह भ्रम पैदा करने वाला। बाजपेयी जी ने ही बताया है कि कुल आबादी का बावन प्रतिशत दस रूपये प्रतिदिन से भी कम पर गुजर बसर कर रहा है। दूसरे निष्कर्ष में उसका

कथन है कि भारत में न्यूनतम श्रम मूल्य ढाई हजार से भी अधिक है। प्रश्न उठता है कि बावन प्रतिशत का तो इस श्रम मूल्य से कोई मतलब नहीं है। संगठित श्रमिक इस गणना से बाहर हैं ही। तो यह न्यूनतम श्रम मूल्य मिलता किसे है? मुलायम सिंह जी ने एक श्रमिक के दाल में अस्सी ग्राम घी की बोतल बन्द शीशी से छौंक लगाया था। उसे बढ़ाकर मायावती जी ने सौ ग्राम कर दिया और बाजपेयी जी ने उस बोतल बन्द घी के छौंक से सरकारी कर्मचारी की दाल की तुलना कर दी। न मुलायम, मायावती जी ने घी के बोतल बन्द होने की बात की न ही बाजपेयी जी ने। श्रमिक तो बेचारा आज भी साठ रूपये प्रतिदिन के रोजगार की लाइन में खड़ा है। किन्तु श्रमिक का न्यूनतम गारंटी मूल्य दो वर्षो में एक पैसा भी न बढ़ाकर साठ ही रखा गया है, जिसकी घोषणा बड़ी मुश्किल से मन मोहन सिंह जी ने की है। वह घोषणा भी साठ रूपये की है जबकि दो वर्षो में मुद्रास्फीति भी बढी है और विकास दर भी इससे तो अच्छा यह होता कि मायावती जी न्यूनतम श्रम मूल्य अस्सी से घटाकर सत्तर कर देती और पूरे उत्तर प्रदेश को सत्तर रूपये की गारंटी दे देतीं जो अब तक भारत सरकार भी नहीं दे पायी है। यदि यूपी का न्यूनतम श्रम मूल्य सौ रूपये तो केन्द्र सरकार द्वारा घोषित साठ रूपये में काम कर रहे लोगों का न्यूनतम श्रम मूल्य कौन सा है? क्यों नहीं मायावती जी श्रम के साथ नकली श्रम मूल्य का नकली मुखौटा उतार फेंकती है। एक ओर तो न्यूनतम श्रम मूल्य की घोषणा और दूसरी ओर सत्तर रूपये में भी काम न दे पाने की मजबूरी। और साथ में यह और कि हमारे विद्वान विचारकों की कलम एक तरफ श्रम मूल्य वृद्धि के लिए प्रसंशा करती हैं और दूसरी ओर साठ रूपये में भी काम न मिल पाने की आलोचना करती है।

सरकारी कर्मचारी और न्यूनतम श्रम मूल्य की तुलना करते समय यह तथ्य भी ध्यान रखना आवश्यक है कि श्रमिक अपने श्रम मूल्य कितने प्रतिशत लेकर घर पहुंचता है और कर्मचारी कितने प्रतिशत। कानून कितना देता है इससे अधिक महत्वपूर्ण है उसे मिलता कितना है। स्वाभाविक ही है कि बाजपेयी जी को सच्चाई मालूम होगी।

नीति–निर्देशक सिद्धान्तों ने समाज का लाभ तो किया कम और नुकसान किया ज्यादा। बुद्धिजीवियों ने पूरे भारत में यह बात प्रचारित कर दी कि शिक्षा का विस्तार विकास का उचित माध्यम है। शिक्षा ने रोजगार के अवसर पैदा न करके रोजगार में छीना–झपटी की। शिक्षा ने अशिक्षितों का रोजगार छीना। सबसे बढ़ा घपला इन बुद्धिजीवियों ने यह किया कि इन्होनें शिक्षा के लिए ग्रामीण उत्पादनों तक पर कर लगा दिया। मैंने इस विषय पर जब गहराई से चिन्तन किया तो पाया कि श्रमक के साथ बुद्धिजीवियों का मजबूत तर्क है शिक्षा विस्तार, भले ही उस धन के लिए गरीबों पर ही टैक्स क्यों न लगाना पड़े।

मुझे तो यह जानकर बहुत दुख हुआ कि सरगार पटेल और राजगोपालाचारी सरीखे राजनेताओं तक ने अशिक्षितों के बालिग मताधिकार का विरोध किया था। भारत में वर्तमान अव्यवस्था के लिए शिक्षित लोग दोषी हैं या अशिक्षित? यदि सिर्फ शिक्षित लोग ही वोट देते और सरकार बनाते तो क्या सुधर जाता। अशिक्षा अक्षमता का आधार मानी जा सकती है, बुरी नीयत का आधार कभी नहीं रही। आज भी अत्याचार और शोषण का प्रतिशत देखा जा सकता है कि कितने प्रतिशत शिक्षित लोग इसमें लिप्त हैं और कितने अशिक्षित। यदि प्रारम्भ में ही शिक्षा की जगह श्रम को रोजगार का आधार बनाया जाता तो आज भारत में शिक्षा का स्तर कई गुना अधिक होता किन्तु बुद्धिजीवियों के षडयंत्र ने ऐसा नहीं होने दिया। आज भी यदि शिक्षा का खर्च शिक्षा प्राप्त करने वालों पर डालकर वह सारा धन ग्रामीण रोजगार गांरटी योजना में डाल दे तो शिक्षा का स्तर स्वयमेव उंचा हो सकता है और सामान्य जीवन स्तर भी सुधर सकता है।

मै तो इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूॅ कि सन् सैंतालिस से आज तक श्रम को उठने से रोंकने का निरन्तर प्रयास हुआ है और आज भी जारी है। विकास का आधार न्यूनतम श्रम मूल्य होता तो बहुत अच्छा होता। किन्तु संविधान निर्मताओ ने प्रारम्भ में ही शिक्षा को जोड़कर गड़बड़ कर दी। कल्पना करिये कि भारत के सब लोग मैट्रिक पास हो जावें, किन्तु बेरोजगार हों, भूखे हों तो क्या ठीक होगा? इससे तो अच्छा यह होगा कि पहले जीवन स्तर उॅचा हो, रोजगार के अवसर पैदा हों, श्रम मूल्य बढ़े और परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर बढ़े। छत्तीसगढ की भाजपा सरकार ने तो और भी कमाल का काम कर दिया है। अब पंचायत चुनाव लड़ने के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता अनिवार्य की गयी है। अब कबीरदास जी पूरी जनता की पसंद के बाद भी पंच नहीं बन सकते थे, किन्तु सहाबुददीन जी सांसद बन सकते हैं, क्योंकि अब पंच बनने की योग्यता के लिए विश्वसनीयता के साथ–साथ शिक्षा भी आवश्यक बनाई जा रही है।

मैने जो कुछ लिखा है वह एक गंभीर मुददा है। इस पर व्यापक विचार मंथन की आवयकता है।

प्रश्न–2 आप बार–बार कहतें हैं कि व्यवस्था से चरित्र प्रभावित होता है जबकि अन्य सब लोग समझाते हैं कि चरित्र का प्रभाव व्यवस्था पर पड़ता है। सभी सामाजिक संस्थाएं चरित्र निर्माण में लगी है, जबकि आप व्यवस्था परिवर्तन में। आप कोई उदाहरण देकर समझावें।

उत्तर– दिल्ली में मैं करीब दो वर्षो से हूॅं। दो वर्ष पूर्व अस्सी प्रतिशत टेम्पों वाले मीटर से किराया लेते थे और कोई विवाद नहीं था। किन्तु धीरे–धीरे टेम्पों वाले मीटर का उपयोग बन्द कर दिये। इस वर्ष के प्रारम्भ तक तो पंचान्नवें प्रतिशत गाड़ियां बिना मीटर के चलने लगीं। कुछ दिनों तक मैनें मीटर की बात उठाई तो गाड़ी वालों ने एक ही बात कही कि मीटर खराब है। अभी एक माह पूर्व दिल्ली में टेम्पों के रेट बदल दिये गये। अब मैं देख रहा हूॅ कि मीटर चलने लगे। एक माह पहले हर टेम्पों वाला मीटर खराब का झूठ बोलता था तथा हर यात्री टेम्पो वाले को अपराधी समझता था। कई लोग तो यह भी आरोप लगाते थे कि पुलिस वालों की मिली भगत है। झगड़े भी बहुत होते थे। किराये के रेट सुधरते ही झगड़ा खत्म हो गया। एक संशोधन ने टेम्पों वालों की मजबूरी दूर कर दी। एक माह पूर्व जहां मै मोल–भाव करके सत्तर रूपये में जाता था वहां अब साठ रूपये में जाने लगा हूॅं। मैं समझता हूॅ कि टेम्पो वालों का चरित्र गिरने का कारण व्यवस्था का दोष था न कि चरित्र का अभाव। यदि अनावश्यक कानूनों को हटा दिया जावे, आवश्यक कानूनों को युक्तिसंगत बना दिया जावे तथा कानूनों का पालन कठोरता से कराना शुरू कर दें तो चरित्र अपने–आप नब्बे प्रतिशत तक सुधर जायेगा। कानूनों की अधिकता चरित्र पतन का विस्तार करते रहे और हम चरित्र निर्माण करते रहें यह गलत दिशा है। मैंने गंभीर विचार मंथन के बाद ही निष्कर्ष निकाला है कि व्यवस्था का चरित्र पर अधिक प्रभाव पड़ता है और चरित्र का व्यवस्था पर कम।

एक रददी और बेकार गाड़ी का ड्राइवर बदलते रहना ही पर्याप्त नहीं। यदि बार–बार ड्राइवर बदलने से भी गाड़ी नहीं चली तो हम गाड़ी को भी सुधरने की पहल करें। हम साठ वर्षो से सिर्फ ड्राइवर को ही दोषी मानने की भूल कर रहे हैं। अब समय आ गया है कि व्यवस्था परिवर्तन की बात पर भी सोचना शुरू करें।

(ग) <u>अपनों से अपनी बात</u>

हमारी कार्य प्रणाली का अन्तिम प्रारूप लगभग बन चुका है। चार स्वतंत्र संगठन चार भिन्न–भिन्न तरीकों से काम प्रारम्भ करेंगे।

1– ज्ञान यज्ञ मण्डल– यह ज्ञान यज्ञ माध्यम से जनमत परिष्कार की लाइन पर चलेगा। प्रत्येक मंगलवार को ग्यारह बजे कार्यालय में एक छोटा यज्ञ रखकर विभिन्न विषय केन्द्रित चर्चा होगी जो एक घण्टे तक चलेगी। कुछ पारंपरिक यज्ञ होंगे जो तीन घण्टे के होंगे। इनमें आधे घण्टे के यज्ञ के बाद ढाई घण्टे की स्वतंत्र विषय पर स्वतंत्र विचार गोष्ठी होगी। कुछ विशेष यज्ञ होंगे जो न्यूनतम तीन दिनों के होंगे। इनमें प्रतिदिन एक सवा घण्टे के यज्ञ के बाद दो सत्रों में प्रतिदिन विभिन्न विषयों पर स्वतंत्र सेमीनार होंगे। इस कार्य का संचालन सुरेश जी कर रहे हैं।

2– संविधान सभा मंथन– भारतीय संविधान की विस्तृत समीक्षा के लिए करीब पन्द्रह सौ विद्वानों का चयन किया जा रहा है। तीन सौ नाम अब तक घोषित हुए है। अन्य चयन जारी है। संविधान मंथन के कुल पचीस विषय चुने गये है। इन विषयों पर ज्ञान तत्व के माध्यम से लगातार विचार मंथन चलेगा। सभी विद्वानों के विचार सबको भेजने की व्यवस्था की जा रही है। ये पन्द्रह सौ विद्वान दिल्ली में एक माह तक लगातार विचार मंथन करके संविधान के प्रारूप् को अन्तिम रूप देंगे। यह कार्य दो हजार नौ के पूर्व ही पूरा हो जायेगा। इस योजना का सारा संचालन रमेश राघव जी कर रहे हैं।

3– लोक स्वराज्य मंच– भारतीय राजनीति पर समाज के नियंत्रण हेतु दो सूत्री संविधान संशोधन को आधार बनाकर एक आंदोलन खड़ा करने का प्रयास किया जा रहा है। इस आंदोलन का नेतृत्व आचार्य पंकज जी कर रहे हैं।

4– श्रम शोषण मुक्ति अभियान– भारत में श्रम के साथ बुद्धिजीवियों ने भी छल किया है और पूॅजीवादीयों ने भी। श्रम शोषण के विरूद्ध एक सूत्री आंदोलन चले यह इस संगठन का मुख्य कार्य है। इसके मुखिया शराफत हुसेन जी सिददीकी है।

इन चारों संगठनों को स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय लेने हैं। ये चारों अपने–अपने खर्चे की स्वयं चिन्ता और व्यवस्था करेंगे। किन्तु चारों के समन्वय के लिए एक व्यवस्था परिवर्तन अभियान समिति होगी। यह समिति इन चारों संगठनों या इस दिशा में काम कर रहे अन्य संगठनों को आर्थिक या अन्य सहायता उपलब्ध करायेगी। व्यवस्था परिवर्तन अभियान का न्यूनतम सदस्यता शुल्क एक सौ रूपया मासिक, एक हजार रूपया वार्षिक या चार हजार रूपया एकमुश्त होगा। इस संगठन की कार्यप्रणाली के पदेन सदस्य चारों संगठनों के प्रमुख रहेंगे। व्यवस्था परिवर्तन के राष्ट्रीय अध्यक्ष अशोक गदिया जी और कार्यकारी अध्यक्ष ओम प्रकाश दुबे है। पांचो संगठनों ेन काम शुरू कर दिया है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान की सदस्यता प्रारम्भ है। अब तक पैंतीस सदस्य बन चुके है। जिनमें गदिया जी के अंशदान को छोड़कर भी श्री घनश्याम जी नोयडा दो हजार रूपया मासिक, पानीपत के साथ का एक हजार रूपया मासिक का सहयोग शामिल है। पन्द्रह हजार रूपया प्रतिमाह सरगुजा जिले का योगदान सितम्बर माह से प्रारम्भ हो रहा है।

सितम्बर माह से ही ज्ञान तत्व का पूर्वार्ध संविधान मंथन के निमित्त जा रहा है। पहला विषय संविधान में उल्लेखित उददेश्यिका पर जा रहा है। भविष्य में भी यह क्रम जारी रहेगा।

लोक स्वराज्य मंच के अध्यक्ष आचार्य पंकज जी और महासचिव दीनानाथ वर्णमाल जी भी दौरा प्रारम्भ कर चुके हैं। श्रम शोषण मुक्ति अभियान भी सक्रिय हो रहा है। लोक स्वराज्य मंच और श्रम शोषण मुक्ति अभियान ने मिलकर सत्रह अक्टूबर को जन्तर–मन्तर पर एक धरना–प्रदर्शन की योजना भी बनायी है जो दस बजे से चार बजे तक चलेगा।

इस तरह एक स्पष्ट रूपरेखा बनी है। इस सम्बन्ध में आप सबसे भी विचार मांगे गये थे जो अभी तक अप्रयाप्त हैं। आप इस संबंध में अपने विचार भेजे जिससे कोई अन्तिम रूपरेखा बन सके।

व्यवस्था परिवर्तन कोई साधारण काम नहीं है। बहुत जटिल प्रक्रिया भी है और कठिन काम भी है। हम यदि पूरे अभियान के विषय में चिन्ता करेंगे तो हम कुछ नहीं कर सकेंगे, क्योंकि न समस्याओं का ओर–छोर पता चलेगा न ही हमे अपनी शक्ति का आभाष होगा। कहां से शुरू करें और सफलता कितनी मिलेगी ये प्रश्न हमें परेशान और निराश कर देंगे। इसलिए आप जिस कार्य से जुड़ना चाहें और जितना जुड़ना चाहें उतना हमें लिखिए या फोन करिये। सत्रह अक्टूबर को जन्तर–मन्तर पर प्रदर्शन होना है। उसके पूर्व सोलह अक्टूबर को दिल्ली कार्यालय में एक बैठक भी होगी जो एक शिविर के रूप में रहेगी। बैठक प्रातः नौ बजे से शाम तक रहेगी। आप चाहें तो रात को लौट सकते हैं या सत्रह को जन्तर–मन्तर पर आन्दोलन में शामिल हो सकते हैं। अपनी सुविधानुसार कार्यक्रम बना सकते है। सोलह की बैठक में आपको आना चाहिए।

(घ) **धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित आतंकवाद**

आचार्य पंकज

एक तथ्य यह भी है कि इस समय संसार में जहां भी आतंकवादी गतिविधियां चल रही है उनमें से अधिकांश संघर्षो के लिए ये ही दो चिन्तन धाराएं प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। ये हैं डरपोक यथार्थहीन कम्युनिस्ट तथा इस्लामी आतंकवादी।

फिलीपिंस से आरम्भ करें और वैश्विक भूगोल पर पश्चिम की ओर चलते जाये ंतो मलेशिया, इण्डोनेशिया, पाकिस्तान और अफगानिस्तान में तालिबान, यूरोप में सर्बिया अल्बानिया, इग्लैण्ड में दक्षिण एशिया के मूल मुस्लिम, (विशेष्तः मीरपुरी), पश्चिम एशिया में फलस्तीनी आतंकवाद और अब अमेरिका में ओसामा बिन लादेन के अलकायदा के आतंकवादी इस लम्बी सूची का हिस्सा है।

इस दूसरे ढंग से देखा जाए तो स्पष्ट होगा कि विश्व के लगभग हर मतावलम्बी के साथ इस्लामी आतंकवादी दो–दो हाथ कर रहे हैं। कहीं ये मूल निवासियों पर जुल्म ढा रहे हैं तो कही ईसाइयों पर कहीं हिन्दुओं पर कहीं पूर्वी ईसाईयत मतावलम्बी, और तो और इन्होंने अधार्मिक कम्युनिस्टों और डालर धर्मी अमेरिकियों को भी नहीं छोड़ा। कहीं बौद्धों पर तो कहीं इनका निशाना यहूदी बन रहे है। एक विराट प्रश्न आज समस्त मानवता के समक्ष मुंह बाये खड़ा है वह यह है कि आखिर इस्लाम में ऐसा क्या है जो इसे हर अन्य मतावलम्बी के विरूद्ध न सिर्फ हथियार उठाने क लिए प्रेरित करता है, अपितु निरीह जनता और अबोध बच्चों तक घोर अमानवीय हिंसा करने की छूट सलाह और निर्देश देता है।

श्री स्वामी दयानन्द ब्रह्मज्ञान आश्रम न्यास
वैदिक सदन, भंवरकुंआ, इन्दौर– 452001

ज्ञान तत्व प्राप्त हुआ। आपका ध्यान आकर्षित कर रहा हूँ आपकी पत्रिका का नाम ज्ञान तत्व है। ज्ञान तत्व अशुद्ध लिखा है। आज देश की दशा के बारे में जो लिखा है वह सब ठीक है। इसके समाधान के लिए आन्दोलन के लिए लिखा है। वर्तमान परिस्थिति में क्रांति करनी होगी अर्थात सरकार के विरूद्ध प्रहार करना होगा। आज तक संसार में जहां–जहां क्रांतियां हुई हैं वे सब सशक्त आंदोलन थे, आपके यहां भी अत्याचारी राजाओं के विरूद्ध राम को कृष्ण को शस्त्र उठाने पड़े थे। अंग्रेजी की गुलामी से मुक्त होने के लिए भी 1857 से 1947 तक क्रांतिकारियों ने शस्त्र उठाये थे। अंतिम क्रांतिकारी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द सेना का गठन किया था। इस समय भारत नेता विहीन है, नेतृत्व की आवश्यकता है।

आप पूरे देश का भ्रमण करें। अनेक लोग मिल जावेंगे। क्रांति के लिए बहुत लोगों से विचार–विमर्श करने की आवश्यकता नहीं है। सावरकरजी ने सुभाष ने स्वयं योजना बनाई थी।

मुझे तो एकमात्र मार्ग क्रांति ही दिखता है। अस्तु।

महावीर त्यागी अध्यक्ष, हरियाणा प्रदेश सर्वोदय
मण्डल आश्रम पट्टी कल्याण जिला–पानीपत–132102

ज्ञान तत्व के अंक 130 अप्रैल प्रथम वर्ष 2007 में वर्ग निर्माण, वर्ग विद्वेष और वर्ग संघर्ष पर एक लेख लिखा है जिसमें इनके 8 कारण गिनाये गये हैं। मात्र आठ कारण ही नहीं अनेक कारण लिखने चाहिए थे।

हर राजनीतिक दल एक बड़ा और बहुत बड़ा कारण है। वर्ग विद्वेष वर्ग संघर्ष का इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। नित नये चुनाव, कभी लोकसभा, कभी विधानसभा, उपचुनाव तो कभी जिला परिषद कभी ब्लाक समिति तो कभी ग्राम पंचायत कभी शुगरमिल तो कभी कोआपरेटिव सोसाइटी इन राजनीतिक पार्टियों ने चुनाव का अखाड़ा बनाया हुआ है पूरे देश को। एक चुनाव में मनमुटाव समय बीतने पर कुछ कम होता है उससे पहले दूसरा चुनाव फिर आ गया। तनकर आमने–सामने लोग हो जाते हैं। कहने का अर्थ है कि ये चुनाव भी समाज को बांटने और लड़ाने का कारण है।

अब तो एक नया संघर्ष शुरू हो रहा है।, ये जो बड़ी–बड़ी जमाते इकटठा हो रही हैं जैसे निरंकारी, सच्चा सौदा, और राधास्वामी ये भी समाज को बांटने में देर–सवेर अवश्य सामने आयेंगे। ऐसे लक्ष